प्रवचन-८, श्लोक-१२, गाथा-५-६, रविवार, फाल्गुन शुक्ल ११, दिनांक ०७-०३-१९७१

नियमसार जीव अधिकार गाथा ५। **यह व्यवहारसम्यक्त्व के स्वरूप का कथन है।**

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।
ववगय असेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो।।५।।

रे ! आप्त-आगम-तत्त्व का श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
निःशेषदोषविहीन जो गुणसकलमय सो आप्त है॥५॥

यह व्यवहार समकित, निश्चय समकित को बताता है। ऐसा आया न पहले ? भेद कथन द्वारा ऐसा जो व्यवहार समकित हो, वह अन्दर निश्चय अनुभव का समकित हो, ऐसा वह बताता है। चन्दुभाई ! व्यवहार हो और निश्चय न हो, ऐसा यहाँ नहीं है।

मुमुक्षु : निश्चयरहित व्यवहार होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह यहाँ बात ही नहीं है। भेद, उसे—अभेद को बताता है। ऐसे समकित को। जिसे ऐसी व्यवहारश्रद्धा हो, उसे अन्तर निश्चय सम्यक् आत्मा का अनुभव समकित होता है, ऐसा बतानेवाला यह व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान आदि हैं। पहले ये कथन आ गया है। भेद कथन द्वारा अभेद समझाना है, भाई ! पण्डितजी ने बहुत सरस किया है। अपिचन्द है न शब्दार्थ में ? उसका थोड़ा अन्वयार्थ करते हैं, पाँच मिनिट।

आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है;... शब्द तो यह है, परन्तु यह व्यवहार है, ऐसा है। कितनों को यह जँचता नहीं कि, नहीं, यह व्यवहार कैसे लिखा इसमें ? ऐसा कि यहाँ तो सम्यक्त्व कहा है, ऐसा कितने ही कहते हैं। **जिसके अशेष (समस्त) दोष दूर हुए हैं...** अब आप्त की व्याख्या। परमेश्वर / आप्त हित के लिये प्रतीति करनेयोग्य परमात्मा ऐसे होते हैं। **जिसके अशेष (समस्त) दोष दूर हुए हैं...** सभी दोष अभावरूप हो गये हैं। **ऐसा जो सकल गुणमय पुरुष,...** और पूर्ण गुणमय पुरुष को यहाँ **आप्त...** कहते हैं। यह आप्त की व्याख्या है। पाठ में तो इतना ही है। फिर टीका में यह सब करेंगे। आगम की भी व्याख्या, तत्त्व की भी व्याख्या करेंगे।

आप्त, अर्थात् शंकारहित। पहली यह बात ली है। जिसे शंका नहीं। **शंका,**

अर्थात् सकल मोहरागद्वेषादिक (दोष)। यह शंका की व्याख्या है। दर्शन, चारित्र, जितने दोष मिथ्यात्वसहित हैं, उन सब दोषों सहित, उसे शंका कहते हैं। उस शंकारहित को आप्त कहते हैं। समझ में आया ? हो गयी नियमसार पुस्तकें ? नहीं होगी ? बाहर अधिक नहीं निकाले होंगे। तपसी ! नियमसार कैसे कम पड़े ? अधिक रखना चाहिए न ? प्रभावना करनेवाले को ५०, ६०, ७० रखना चाहिए। क्या जवाब दिया ? रामजीभाई कहते हैं। ये समझते नहीं। गुजराती तो, हिन्दी हो न हिन्दी। बहुत हिन्दी हो। अब रविवार था, इसलिए अधिक हो। फिर मँगा लो न बाद में क्या। कहो, समझ में आया ? रविवार के दिन अधिक लोग होते हैं न, यह तो शब्द अन्दर हों तो उन्हें ख्याल आवे।

आप्त अर्थात् परमेश्वर सर्वज्ञदेव। वह किसे कहते हैं ? जो शंकारहित हों उन्हें। पाठ में ऐसा है न ? **ववगय असेसदोसो** इसे संक्षेप में कह दिया कि शंका अर्थात् मोह, मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि दोष। हुआ ? **सयलगुणप्पा** है न चौथा पद ? उसमें ऐसा कहा कि शंकारहित। इतने में समाहित कर दिया। भाई ! समझ में आया ? आप्त अर्थात् परमेश्वर वीतरागदेव सर्वज्ञदेव। यहाँ सकल गुणमय अस्ति और दोषरहित, यह नास्ति है। उसे शंकारहित में दोनों को समाहित कर दिया। शंका, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि दोष। हुआ ? उससे रहित वह गुण, वह आप्त। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आप्त की व्याख्या इतनी संक्षिप्त की है। परमेश्वर उन्हें कहते हैं कि जिन्हें मोह नहीं। जिन्हें राग, द्वेष, शोक, वासना, विषय-विकल्प, रति-अरति, किसी भी दोष का अभाव है अर्थात् उनमें ये अभाववाले गुण जो हैं, उन गुणों का उन्हें सद्भाव है। ऐसी इतनी संक्षिप्त व्याख्या ले ली।

अब आगम किसे कहते हैं ? आगम की व्याख्या। पाठ में समुच्चय शब्द है। परन्तु यहाँ अब उसकी व्याख्या करते हैं। **आप्त के मुखारविन्द से निकली हुई,...** सर्वज्ञ परमेश्वर। शब्द तो मुखारविन्द है। मुखरूपी कमल से निकली हुई। लोग इस प्रकार समझते हैं न ? वरना तो तीर्थंकर सर्वज्ञ को वाणी तो सम्पूर्ण शरीर में से ओम ध्वनि (उठती है)। होंठ हिलते नहीं, कण्ठ चलता नहीं। सम्पूर्ण शरीर में से ध्वनि उठती है, ओम—ऐसी आवाज उठती है। समझ में आया ? परन्तु प्रचलित भाषा लोग ऐसा समझते हैं, इसलिए इन्होंने मुखारविन्द शब्द लिया है। मुखरूपी कमल में से निकली हुई। समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञ के-परमेश्वर के मुख से निकली हुई, **समस्त वस्तुविस्तार का**

स्थापन करने में समर्थ... जितने तीन काल, तीन लोक के द्रव्य, गुण और पर्याय हैं, उन्हें स्थापित करने में-सिद्ध करने में-साबित करने में जो वाणी समर्थ है। **ऐसी चतुर वचनरचना।** ऐसी चतुर वचनरचना को आगम कहा जाता है। समझ में आया? यह अज्ञानियों ने कल्पना से शास्त्र रचे हों, वह आगम नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐई, प्रकाशदासजी! क्या हुआ? वह आगम सत्य है? उससे यहाँ इनकार करते हैं।

आप्त सर्वज्ञ परमेश्वर के मुख से निकली हुई वाणी, वह भी चतुरवचन और सर्व वस्तु की स्थापना करने में समर्थ, उस वाणी को आगम कहा जाता है। कहो, समझ में आया? उस आगम की श्रद्धा, यहाँ तो ऐसा कहना है न? उस आप्त की श्रद्धा और आगम की श्रद्धा, वह व्यवहार सम्यक्त्व है। वह विकल्प है, परन्तु वह व्यवहार सम्यक्त्व बताता है अन्दर में ऐसी आत्मा की श्रद्धा और आत्मा का ज्ञान। समझ में आया? अहं आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति अभेद की प्रतीति अनुभव में (हुई) और उसका स्वसंवेदन ज्ञान (हुआ), वह निश्चय दर्शन-ज्ञान है। उसे यह व्यवहार दर्शन और श्रद्धा बताते हैं कि यह वस्तु इसके पास है। समझ में आया? प्रश्न ऐसा न हो कि व्यवहार श्रद्धा हो, वहाँ निश्चय न हो। यह यहाँ प्रश्न ही नहीं है।

मुमुक्षु : तब तो व्यवहाराभास होगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहाराभास नहीं परन्तु उसे वह व्यवहार ही नहीं है। व्यवहार तो जिसे आत्मा एकरूप अखण्ड अभेद अनुभव में आकर प्रतीति हुई है, उसे ऐसा व्यवहार समकित कहने में आता है। सुमेरुमलजी! भाई! देखो! देव ऐसे होते हैं। समझ में आया? इसका स्पष्टीकरण करेंगे। १८ दोषरहित।

ऐसी चतुर वचनरचना। देखो! भाई ने मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है न कि ऐसी अकेली साधारण कथायें हैं, गणधर जैसी जिनकी वचन-शास्त्ररचना नहीं, उन्हें तुम सूत्र कहते हो। आता है न? भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। बहुत लिखा है। एक-एक (बात का गजब स्पष्टीकरण है)। ओहो...हो..! साधारण वार्ता जैसी तीर्थंकर की वाणी, गणधर की वाणी ऐसी होगी? आहा..हा..! वह तो सर्व वस्तु को सिद्ध करनेवाली और चतुर वचन की रचना है, उसे आगम कहा जाता है। ऐसे आगम की श्रद्धा, वह भी अभी विकल्प-व्यवहार समकित है, वह भी जिसे यह अन्दर निश्चय समकित बतावे, उसे ऐसा व्यवहार समकित होता है। आहा..हा..! समझ में आया?

अब तत्त्वों की श्रद्धा। व्यवहार समकित की बात चलती है। **तत्त्व, बहिःतत्त्व...** अर्थात्? दो भाग किये। एक अन्तःतत्त्वरूप परमात्मा स्वयं स्वरूप और बहिःतत्त्व में सात (तत्त्व) संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि बहिःतत्त्व। ऐसी दोनों की श्रद्धा, वह भी व्यवहार है। पण्डितजी! अन्तःतत्त्वरूप परमात्मस्वरूप अपना त्रिकाल और बहिःतत्त्व—आस्रव, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा, मोक्ष, ऐसे दो तत्त्वों की श्रद्धा, भेदवाली श्रद्धा है; इसलिए उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। समझ में आया? वह व्यवहार समकित अन्दर में ऐसा बताता है कि इसे अभेद चैतन्यमूर्ति की सम्यक् अभेद श्रद्धा है। समझ में आया? इसे ऐसे भेदवाले की श्रद्धा का विकल्प अभेद को बताने के लिये है। समझ में आया?

बहिःतत्त्व और अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व... ऐसे दो भेद किये। एक परमात्मस्वरूप अन्तःतत्त्वरूप वस्तु शाश्वत और बहिर; अर्थात् दो भाग पड़ गये न, इसलिए इसे व्यवहार कहा। अकेला अन्तःतत्त्व परमात्मस्वरूप का अनुभव और सम्यग्दर्शन, वह तो निश्चय है। समझ में आया? परन्तु वह परमात्म और साथ में यह बहिःतत्त्व, इन दो की श्रद्धा को व्यवहार समकित कहते हैं। वजुभाई! भारी सूक्ष्म! है न? शब्द है न, देखो! **ऐसे भेदोंवाले हैं...** ऐसा है न? ये दो भेद पड़े न? भगवान आत्मा स्वयं परिपूर्ण अभेद और उसके साथ उन सात आदि का भेद, दो होकर यहाँ व्यवहार कहने में आया है। अकेला जो अभेद तत्त्व है, उसका अनुभव और श्रद्धा, वह तो निश्चय है। समझ में आया?

अथवा... दो भेदवाला कहकर **अथवा जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष—ऐसे भेदों के कारण सात प्रकार के हैं।** यह भी व्यवहार समकित। **जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष—ऐसे...** पर्यायों के भेद, उनकी श्रद्धा, वह भी व्यवहार समकित है। विकल्प है। वह विकल्प, निर्विकल्प अभेद चैतन्य समकित है, उसे बतानेवाला है। समझ में आया? गजब सूक्ष्म। **सात प्रकार के हैं।** उनकी श्रद्धा **उनका...** अर्थात् तीन को मिलाया। **(आप्त का, आगम का और तत्त्व का)...** ये दो प्रकार के तत्त्व। परमात्मतत्त्व, बहिरतत्त्व और सात तत्त्व। उनका सम्यक्श्रद्धान, उनका भलीभाँति श्रद्धान, वह व्यवहार समकित है। उसे तो अभी विकल्पवाला व्यवहार समकित कहा जाता है। उसे अन्तर में, अनुभव में सम्यग्दर्शन है, एकरूप भगवान अभेद चैतन्य में मोक्ष, संवर आदि पर्यायों का अभाव है, ऐसे अन्तःतत्त्व की, अन्तःतत्त्वरूप परमात्मतत्त्व की श्रद्धा, वह निश्चय है। उसके साथ यह व्यवहार समकित ऐसा होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार समकित हेयरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार हेयरूप है। यह प्रश्न ही कहाँ है? परन्तु यह तो ऐसा बताता है, इतना बताने के लिये निमित्त की बात की है। वह आदरणीय नहीं, अनुसरण करनेयोग्य नहीं। (समयसार) ८वीं गाथा में आ गया है। भेद से समझाया जाता है, तथापि भेद अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। ८वीं गाथा में आता है या नहीं? यह तो अपने कहाँ दृष्टान्त बारम्बार देना? यह तो है वह है। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : इनका प्रश्न ऐसा है कि इसमें हेय लिखा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय नहीं लिखा, इसका अर्थ क्या? व्यवहार अर्थात् हेय। व्यवहार अर्थात् अभूतार्थ। अभूतार्थ अर्थात् हेय। आश्रय करनेयोग्य नहीं, जाननेयोग्य है। इसमें जरा गड़बड़ करते हैं न कितने ही, कि इसमें व्यवहार किसलिए लिखा? पद्मप्रभमलधारिदेव ने भूल की है। व्यवहार समकित... क्योंकि रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है, देव-गुरु-शास्त्र... ऐसे यह भी सच्चा समकित है।

मुमुक्षु : यहाँ निश्चय से बात की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार की बात की है। वह तो अन्दर का भाव। देव-गुरु-शास्त्र का जो भाव कहना है, उस भाव की श्रद्धा। अरे रे! क्या हो? बात स्वयं को अनुसरे। अनुसरे (ऐसे) अर्थ शास्त्र के करे, परन्तु शास्त्र के अनुसार अपनी श्रद्धा करे, ऐसा नहीं, लो! यह श्रद्धा। परमात्मा की श्रद्धा, परद्रव्य अनुसारी है; इसलिए व्यवहार। आगम की श्रद्धा परद्रव्यानुसारी है; इसलिए व्यवहार है। अन्तःतत्त्व और बहिःतत्त्व ऐसे दो भेद, वे भी परद्रव्यानुसारी हुए। ऐसे नवतत्त्व की, सात की श्रद्धा, वह भी परद्रव्यानुसारी हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : परद्रव्यानुसारी, इसलिए बन्ध का कारण होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ क्या हुआ फिर? स्वद्रव्य अनुसार अर्थात् मोक्ष का कारण। परद्रव्य अनुसार... होता है। इतना बताया है। निश्चय को बताने के लिये। व्यवहार समकित आदि जहर है। गजब बात है। जहर अमृत को बतावे। यह सामने दूसरी चीज़ है। अभेद चीज़, ऐसा बतलाने में निमित्त है। आहा..हा..! क्या हो? समझ में आया?

(आप्त का, आगम का और तत्त्व का) सम्यक्श्रद्धान,... देखो! सम्यक् शब्द

प्रयोग किया है न ? व्यवहार सम्यक्, व्यवहार सम्यक्, व्यवहाररूप से सच्चा है। इससे विरुद्ध नहीं हो, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....यह तो अपनी पामरता... स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में तिनके का अर्थ ऐसा कि अपनी पर्याय बहुत हीन है। अनुभव है, सम्यग्दर्शन है परन्तु केवलज्ञानी... यह बात। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, अनन्तानुबन्धी की व्याख्या में है। स्वामी कार्तिक, आगे गाथा आयी है। सम्यग्दृष्टि जीव स्वरूप को तो परमात्मारूप से स्वीकार करता है। पर्याय में पामरता जानता है, क्योंकि कहाँ केवलज्ञान और कहाँ समकित ? इन दो की अपेक्षा से वहाँ बात है। समझ में आया ?

श्लोक-१२

अब, पाँचवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहा जाता है —

(आर्या)

भवभयभेदिनि भगवति भवतः किम्भक्तिरत्र न समस्ति।
तर्हि भवाम्बुधि-मध्य-ग्राह-मुखान्तर्गतो भवसि ।।१२।।

(वीरछन्द)

भवभय नाशक भगवन्तों के प्रति क्या तुझको भक्ति नहीं ?
तो जानो तुम भवसमुद्र-थित मगरमच्छ के मुख में हो ही ॥१२॥

श्लोकार्थ :- भव के भय का भेदन करनेवाले इन भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है ? तो तू भवसमुद्र के मध्य में रहनेवाले मगर के मुख में है ॥१२॥

श्लोक-१२ पर प्रवचन

भवभयभेदिनि भगवति भवतः किम्भक्तिरत्र न समस्ति।
तर्हि भवाम्बुधि-मध्य-ग्राह-मुखान्तर्गतो भवसि ।।१२।।

अरे ! **भव के भय का भेदन करनेवाले इन भगवान...** देखो ! निश्चय से भगवान अपना ही है, उसका भान है, उसमें उसे ऐसे भगवान होते हैं, ऐसा कहते हैं। भक्ति होती है। व्यवहार श्रद्धा कहो या भक्ति कहो। आत्मा का निश्चय अनुभव समकित कहो या निश्चय भक्ति कहो। समझ में आया ? देखो न ! भक्ति शब्द प्रयोग किया है न ? भक्ति शब्द प्रयोग किया है अर्थात् कि भक्ति व्यवहार समकित है न ? तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ, आगम आदि की श्रद्धा, वह व्यवहार समकित विकल्प है। वह व्यवहार भक्ति है। निश्चय से आत्मा के स्वरूप में अनुभव की प्रतीति की भक्ति, वह निश्चयभक्ति है। सुजानमलजी ! बहुत गजब बातें, भाई ! आहा..हा.. !

इसकी प्रभुता में पहुँचाना इसे।... आहा..हा.. ! इसे अन्दर पहुँचाने में, कहते हैं कि व्यवहार विकल्प से इसे ज्ञान होता है। ओहो.. ! यह वस्तु अन्तर अखण्ड परिपूर्ण है। उसकी श्रद्धा का समकित निश्चय, व्यवहार उसे बताता है। बस, समझ में आया ? बताता है, इसलिए व्यवहार लाभदायक है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यही सब विवाद उठता है न ? शास्त्र में व्यवहार की बातें बहुत आती है। भेद पाड़े बिना समझाने का कोई उपाय है नहीं। परमात्मा अभेद को किस प्रकार समझा सके ? समयसार की ९-१०वीं गाथा।

भव के भय का भेदन करनेवाले... सब भ... भ.. हैं। **भव के भय...** चौरासी के अवतार। आहा..हा... ! उसका जो भय, उसे भेदनेवाले, ऐसे इन भगवान, **उनके प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है ?** उनके प्रति तुझे प्रेम नहीं ? **तो तू भवसमुद्र के मध्य में...** भवसमुद्र के मध्य में.. आहा..हा.. ! महास्वयंभूरमण समुद्र हो, उसमें मध्य में मछली पड़ी हो, मछली को तो बाधा नहीं आती, कहते हैं, लो न। मनुष्य पड़ा हो या पशु पड़ा हो, उसे निकलना कहाँ ? इसी प्रकार चौरासी के अवतार, कहीं किनारा नहीं मिले, कहीं अन्त नहीं मिले, ऐसे अनन्त भवजलरूपी समुद्र में से निकलने को... भगवान के प्रति प्रेम और भक्ति तुझे नहीं तो **भवसमुद्र के मध्य में रहनेवाले मगर के मुख में है।** वापस ऐसा। वापस अकेला भिन्न भी नहीं। आहा..हा.. ! मध्य में रहा हुआ मगरमच्छ, उसके मुख में। मिथ्यात्वरूपी महा मगरमच्छ है न ! भगवान की जिसे भक्ति नहीं, उसे आत्मा की भक्ति नहीं।

आत्मा अखण्ड परिपूर्ण प्रभु की जिसे श्रद्धा है, उसे ऐसे परमात्मा की श्रद्धा होती है, ऐसा कहा है और यदि उनकी श्रद्धा नहीं तो तुझे आत्मा की भी श्रद्धा नहीं। भव जल

के समुद्र के मध्य में रहे हुए मगर के मुख में है। आहा..हा..! समझ में आया? मगरमच्छ। वह अजगर है। वह महिला, उस भव में। इस भव में विशल्या, (पहले के) भव में चक्रवर्ती की पुत्री थी। नाम भूल गये। चक्रवर्ती की पुत्री थी न, फिर उसे कोई विद्याधर ले गया। जंगल में डाल दी। जंगल में कोई नहीं होता। उसमें मगरमच्छ... मगरमच्छ क्या, अजगर। अजगर। उसमें उसका चक्रवर्ती पिता खोजते-खोजते आया। अजगर को मारने के लिये बाण उठाया, फाड़ डालूँ। कन्या कहती है, पिताजी! मैंने तो (आहार नहीं लेने की प्रतिज्ञा ली है) बाहर निकली तो भी निभनेवाली नहीं हूँ। अजगर को मत मारो। समझ में आया? पिताजी! मेरे आहार का त्याग है। इसे मत मारो। आधी अजगर निगल गया था और आधी बाहर थी। देह छूट गयी। निगल गया, लो! विशल्या। आता है न? जब लक्ष्मण को बाण लगा था, रावण की विद्या से मूर्च्छा आ गयी, मूर्च्छा।.....रामचन्द्रजी उलझन में आ गये। पुरुषोत्तम पुरुष, धर्मात्मा मोक्षगामी, यह अन्तिम देह थी, परमात्मा होनेवाले। वे भी एक बार अभी राग था न। ऐसे लक्ष्मण को देखकर... अरे! यह प्रातःकाल तक इसका क्या होगा? किसी ने कहा कि सबेरा होने से पहले नहीं जगे तो समाप्त... आहा..हा..! किसी ने कहा कि विशल्या (नामक) एक महिला है, उसका स्नान का पानी छिड़को। ऐसी सती महिला है, पुण्यवन्त है। कहाँ है? तो कहे भरत के राज में। कहो, भरत को। उसके पिता को-पुत्री को भेजे। वह जहाँ आती है, वहाँ.... यह होता है या नहीं निमित्त से? यहाँ होनेवाला था, उसमें यह निमित्त कहने में आती है। आहा..हा..!

रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी, बड़ी सेना, करोड़ों लोग, कोई घायल हुए, जहाँ वह कहते हैं वहाँ, क्या कहलाता है? तम्बू। बड़ा तम्बू था। महान बड़े पुरुष हैं। देव के द्वारा पूजनीय पुरुष। जहाँ अन्दर आकर पानी छिड़के वहाँ जागृत हो जाते हैं। आहा..हा..! देखो! यह जगत की विचित्रता। ऐसा दृष्टान्त दिया है न कहीं?

अध्यात्म पंचसंग्रह है न? वहाँ दिया है। विशल्या ने जहाँ ऐसा किया, ... (इसी प्रकार) आत्मा को सम्यग्दर्शन और ज्ञान का पानी छिड़का तो अन्दर से जागृत हो गया। आहा..हा..! अरे! मैं तो आत्मा परमात्मा। समझ में आया? परिणति के ऊपर बात की है। अपनी निर्मल परिणति होती है न? जहाँ जागते हैं। अहो! सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द का धाम, वह मैं हूँ। मुझमें शरीर, वाणी नहीं, कर्म और राग भी नहीं। अल्पज्ञता भी नहीं।

ऐसा सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को अपनी निर्मल परिणति द्वारा जगाते हैं। वह जगा, वह अपना स्वराज्य लेने के लिये। लक्ष्मण बाहर का राज्य लेने के लिये जागे। समझ में आया? भाषा देखो न कैसी है?

भवाम्बुधिमध्यग्राहमुखान्तर्गतो मगरमच्छ के मुख में है। महामिथ्यात्वरूपी मगरमच्छ। आहा..हा..! उसे मिथ्यात्वभाव में भवसमुद्र में डूबनेवाले हैं। समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा हुई। अब अठारह दोष का वर्णन। पीछे (गाथा ५ में) दोष कहे न? सकल दोषरहित, ऐसा कहा था न? अब दोष क्या? यह (कहते हैं)।

गाथा-६

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
सेदं खेदो मदो रइ विम्हिय णिद्दा जणुव्वेगो।।६।।

क्षुधा तृष्णा भयं रोषो रागो मोहश्चिन्ता जरा रुजा मृत्युः।
स्वेदः खेदो मदो रतिः विस्मय-निद्रे जन्मोद्वेगौ।।६।।

अष्टादशदोषस्वरूपाख्यानमेतत्। असातावेदनीयतीव्रमन्दक्लेशकरी क्षुधा। असाता-वेदनीयतीव्रतीव्रतरमन्दमन्दतरपीडया समुपजाता तृषा। इहलोकपरलोकात्राणागुप्तिमरणवेदना-कस्मिकभेदात् सप्तधा भवति भयम्। क्रोधनस्य पुन्सस्तीव्रपरिणामो रोषः। रागः प्रशस्तो-ऽप्रशस्तश्च, दानशीलोपवासगुरुजनवैयावृत्त्यादिसमुद्भवः प्रशस्तरागः, स्त्रीराजचौरभक्त-विकथालापाकर्णनकौतूहलपरिणामो ह्यप्रशस्तरागः। चातुर्वर्ण्यश्रमणसङ्घवात्सल्यगतो मोहः प्रशस्त इतरोऽप्रशस्त एव। चिन्तनं धर्मशुक्लरूपं प्रशस्तमितरदप्रशस्तमेव। तिर्यङ्मानवानां वयःकृतदेहविकार एव जरा। वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यसञ्जातकलेवरविपीडैव रुजा। सादि-सनिधनमूर्तेन्द्रियविजातीयनरनारकादिविभावव्यञ्जनपर्यायविनाश एव मृत्युरित्युक्तः। अशुभ-कर्मविपाकजनितशरीरायाससमुपजातपूतिगन्धसम्बन्धवासनावासितर्वार्बिन्दुसन्दोहः स्वेदः। अनिष्टलाभः खेदः। सहजचतुरकवित्वनिखिलजनताकर्णामृतस्यन्दिसहजशरीरकुलबलैश्वर्यै-रात्माहंकारजननो मदः। मनोज्ञेषु वस्तुषु परमा प्रीतिरेव रतिः। परमसमरसीभावभावना-परित्यक्तानां क्वचिदपूर्वदर्शनाद्विस्मयः। केवलेन शुभकर्मणा, केवलेनाशुभकर्मणा, मायया, शुभाशुभमिश्रेण देवनारकतिर्यङ्मनुष्यपर्यायेषूत्पत्तिर्जन्म। दर्शनावरणीयकर्मोदयेन प्रत्यस्त-मितज्ञानज्योतिरेव निद्रा। इष्टवियोगेषु विक्लवभाव एवोद्वेगः। एभिर्महादोषैर्व्यापास्त्रयो लोकाः। एतैर्विनिर्मुक्तो वीतरागसर्वज्ञ इति।

तथा चोक्तं ह्न

सो धम्मो जत्थ दया सो वि तवो विसयणिग्गहो जत्थ।
दस-अट्ठ-दोस-रहिओ सो देवो णत्थि सन्देहो।।

तथा चोक्तं श्रीविद्यानन्दस्वामिभिः ह्न

(मालिनी)

अभिमत-फल-सिद्धे-रभ्युपायः सुबोधः,
स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः,
न हि कृत-मुपकारं साधवो विस्मरन्ति।।

तथाहि ह्न

है दोष अष्टादश कहे रति मोह, चिन्ता, मद, जरा।
भय, दोष, राग, रु जन्म, निद्रा, रोग, खेद, क्षुधा, तृषा॥६॥

अन्वयार्थ :—[क्षुधा] क्षुधा, [तृष्णा] तृषा, [भयं] भय, [रोषः] रोष (क्रोध), [रागः] राग, [मोहः] मोह, [चिन्ता] चिन्ता, [जरा] जरा, [रुजा] रोग, [मृत्युः] मृत्यु, [स्वेदः] स्वेद (पसीना), [खेदः] खेद, [मदः] मद, [रितः] रति, [विस्मयनिद्रे] विस्मय, निद्रा, [जन्मोद्वेगौ] जन्म और उद्वेग [-अरति] (यह अठारह दोष हैं)।

टीका :—यह अठारह दोषों के स्वरूप का कथन है।

(१) असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र अथवा मन्द क्लेश की करनेवाली वह क्षुधा है (अर्थात्, विशिष्ट-खास प्रकार के असातावेदनीयकर्म के निमित्त से होनेवाली जो विशिष्ट शरीर अवस्था, उस पर झुकाव करने से, मोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाला, खाने की इच्छारूप दुःख, वह क्षुधा है)। (२) असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र, तीव्रतर (अधिक तीव्र), मन्द अथवा मन्दतर पीड़ा से उत्पन्न होनेवाली, वह तृषा है (अर्थात्, विशिष्ट असाता -वेदनीयकर्म के निमित्त से होनेवाली, जो विशिष्ट शरीर-अवस्था, उस पर झुकाव करने से मोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाला, जो पीने की इच्छारूप दुःख, वह तृषा है)।(३) इस लोक का भय, परलोक का भय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, तथा अकस्मातभय — इस प्रकार भय सात प्रकार के हैं। (४) क्रोधी पुरुष का तीव्र परिणाम, वह रोष है। (५) राग, प्रशस्त और अप्रशस्त होता है। दान, शील, उपवास तथा गुरुजनों की वैयावृत्त्य आदि में उत्पन्न होनेवाला, वह प्रशस्तराग है और स्त्रीसम्बन्धी, राजासम्बन्धी, चोरसम्बन्धी तथा भोजनसम्बन्धी विकथा कहने तथा सुनने के कौतूहलपरिणाम, वह अप्रशस्त-राग है।

(६) चार प्रकार* के श्रमणसंघ के प्रति वात्सल्यसम्बन्धी मोह, वह प्रशस्त है और उससे अतिरिक्त मोह, अप्रशस्त ही है। (७) धर्मरूप तथा शुक्लरूप चिन्तन (चिन्ता; विचार) प्रशस्त है और उसके अतिरिक्त (आर्तरूप तथा रौद्ररूप चिन्तन) अप्रशस्त ही है।(८) तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों को वयकृत देहविकार (आयु के कारण होनेवाली शरीर की जीर्णदशा), वही जरा है।(९) वात, पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न होनेवाली कलेवर (शरीर) सम्बन्धी पीड़ा, वही रोग है।(१०) सादि-सनिधन, मूर्त इन्द्रियोंवाली विजातीय नर-नारकादि विभावव्यंजनपर्याय का जो विनाश, उसी को मृत्यु कहा गया है। (११) अशुभकर्म के विपाक से जनित, शारीरिक श्रम से उत्पन्न होनेवाला जो दुर्गन्ध के सम्बन्ध के कारण, बुरी गन्धवाले जलबिन्दुओं का समूह, वह स्वेद है। (१२) अनिष्ट की प्राप्ति (अर्थात्, कोई वस्तु अनिष्ट लगना), वह खेद है।(१३) सर्व जनता के (जनसमाज के) कानों में अमृत उंडेलनेवाले सहज चतुर कवित्व के कारण, सहज (सुन्दर) शरीर के कारण, सहज (उत्तम) कुल के कारण, सहज बल के कारण तथा सहज ऐश्वर्य के कारण, आत्मा में जो अहंकार की उत्पत्ति, वह मद है। (१४) मनोज्ञ (मनोहर सुन्दर) वस्तुओं में परम प्रीति, सो रति है। (१५) परम समरसीभाव की भावनारहित जीवों को (परम समताभाव के अनुभवरहित जीवों को) कभी पूर्व काल में न देखा हुआ देखने के कारण होनेवाला भाव, वह विस्मय है।(१६) केवल शुभकर्म से देवपर्याय में जो उत्पत्ति, केवल अशुभकर्म से नारकपर्याय में जो उत्पत्ति, माया से तिर्यंचपर्याय में जो उत्पत्ति, और शुभाशुभ मिश्रकर्म से मनुष्यपर्याय में जो उत्पत्ति, सो जन्म है।(१७) दर्शनावरणीयकर्म के उदय से जिसमें ज्ञानज्योति अस्त हो जाती है, वही निद्रा है। (१८) इष्ट के वियोग में विक्लवभाव (घबराहट) ही उद्वेग है—इन (अठारह) महादोषों से तीन लोक व्याप्त है। वीतरागसर्वज्ञ इन दोषों से विमुक्त हैं।

(वीतरागसर्वज्ञ को द्रव्य-भाव घातिकर्मों का अभाव होने से, उन्हें भय, रोष, राग, मोह, शुभाशुभ चिन्ता, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा तथा उद्वेग कहाँ से होंगे ?)

और उनको समुद्र जितने सातावेदनीय कर्मोदय के मध्य, बिन्दु जितना

---

* श्रमण के चार प्रकार इस प्रकार हैं - १. ऋषि, २. मुनि, ३. यति, और ४. अनगार। ऋद्धिवाले श्रमण, वे ऋषि हैं; अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान अथवा केवलज्ञानवाले श्रमण, वे मुनि हैं; उपशमक अथवा क्षपकश्रेणी में आरूढ़ श्रमण, वे यति हैं और सामान्य साधु, वे अनगार हैं - ऐसे चार प्रकार का श्रमणसंघ है।

असातावेदनीय कर्मोदय वर्तता है, वह मोहनीयकर्म के बिल्कुल अभाव में, लेशमात्र भी क्षुधा या तृषा का निमित्त कहाँ से होगा ? नहीं होगा, क्योंकि चाहे जितना असातावेदनीयकर्म हो, तथापि मोहनीयकर्म के अभाव में दुःख की वृत्ति नहीं हो सकती, तो फिर यहाँ तो जहाँ अनन्तगुने सातावेदनीयकर्म के मध्य, अल्पमात्र (अविद्यमान जैसा) असातावेदनीयकर्म वर्तता है, वहाँ क्षुधा-तृषा की वृत्ति कहाँ से होगी ? क्षुधा-तृषा के सद्भाव में अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि कहाँ से सम्भव होंगे ? इस प्रकार वीतरागसर्वज्ञ को क्षुधा (तथा तृषा) न होने से उन्हें कवलाहार भी नहीं होता। कवलाहार के बिना भी उनके (अन्य मनुष्यों को असम्भावित ऐसे), सुगन्धित, सुरसयुक्त, सप्त धातुरहित, परमौदारिकशरीररूप नोकर्माहार के योग्य, सूक्ष्म पुद्गल प्रतिक्षण आते हैं और इसलिए शरीरस्थिति रहती है।

और पवित्रता तथा पुण्य का ऐसा सम्बन्ध होता है, अर्थात् घातिकर्मों के अभाव को और शेष रहे अघातिकर्मों का ऐसा सहज सम्बन्ध होता है कि वीतरागसर्वज्ञ को उन शेष रहे अघातिकर्मों के फलरूप परमौदारिकशरीर में जरा, रोग तथा स्वेद नहीं होते।

और केवली भगवान को भवान्तर में उत्पत्ति के निमित्तभूत शुभाशुभभाव न होने से, उन्हें जन्म नहीं होता और जिस देहवियोग के पश्चात् भवान्तरप्राप्तिरूप जन्म नहीं होता, उस देहवियोग को मरण नहीं कहा जाता।

(इस प्रकार वीतरागसर्वज्ञ अठारह दोषरहित हैं।)

इसी प्रकार (अन्य शास्त्र में गाथा द्वारा) कहा है कि —

'वह धर्म है, जहाँ दया है; वह तप है, जहाँ विषयों का निग्रह है; वह देव है, जो अठारह दोषरहित है, इस सम्बन्ध में संशय नहीं है।'

और श्री विद्यानन्दिस्वामी ने (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

इष्ट प्राप्ति होती सुबोध से, बोध शास्त्र से होता है।
और सुशास्त्रों का उद्भव भी, आप्त पुरुष से होता है॥
अतः ज्ञानियों द्वारा पूज्य सदा, होते हैं आप्त प्रभो।
किया हुआ उपकार कभी भी, नहीं भूलते सज्जन जो॥

श्लोकार्थ :—इष्टफल की सिद्धि का उपाय, सुबोध है (अर्थात्, मुक्ति की

प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है); सुबोध, सुशास्त्र से होता है; सुशास्त्र की उत्पत्ति, आप्त से होती है; इसलिए उनके प्रसाद के कारण आप्तपुरुष, बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं (अर्थात्, मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं) क्योंकि किये हुए उपकार को साधुपुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।

गाथा-६ पर प्रवचन

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
सेदं खेदो मदो रइ विम्हिय णिद्दा जणुव्वेगो।।६।।

है दोष अष्टादश कहे रति मोह, चिन्ता, मद, जरा।
भय, दोष, राग, रु जन्म, निद्रा, रोग, खेद, क्षुधा, तृषा॥६॥

यह अठारह दोष के स्वरूप का कथन है। देखो! वीतराग के मार्ग में परमेश्वर अरिहन्त कैसे होते हैं? अठारह दोषरहित होते हैं, उसकी व्याख्या। कोई भी इसमें से एक दोष सहित हो, वे अरिहन्त नहीं है।

यह, अठारह दोषों के स्वरूप का कथन है। टीका शुरु करते हैं। **असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र अथवा मन्द क्लेश की करनेवाली...** क्षुधा... क्षुधा... **असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र अथवा मन्द क्लेश की करनेवाली, वह क्षुधा है।** यह व्याख्या है। **(अर्थात्, विशिष्ट-खास प्रकार के असातावेदनीयकर्म के निमित्त से होनेवाली जो विशिष्ट शरीर अवस्था,...)** शरीर की दशा अन्दर होती है न? क्षुधा, यह शरीर की दशा है अन्दर। **(उस पर झुकाव करने से, मोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाला, खाने की इच्छारूप दुःख, वह क्षुधा है)।** क्षुधा... समझ में आया? भगवान को भूख लगे, आहार लावे, रोग हो, दवा लावे—यह भगवान को नहीं होता। लो! यह पहली भूल। क्या? मोहनभाई! भगवान को रोग हुआ, आहार लाये, दवा लाये... मिथ्या चित्रण है। वे शास्त्र भी सच्चे नहीं हैं और उनके कहे हुए भगवान भी सच्चे नहीं हैं - ऐसी बात है। पण्डितजी! भारी बात कठिन पड़े।

उन्हें असातावेदनीय का उदय है न? ऐसा कहते हैं।...ऐसा कहते हैं। इसलिए यह

व्याख्या की है। उनकी क्षुधा और उसमें खाने की इच्छा हो तो क्षुधा कही जाती है। उन्हें इच्छा-विच्छा है नहीं। आहा..हा..! परमेश्वर जहाँ अनन्त आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का पूरा अनुभव प्रगट हुआ, उन्हें ऐसी वेदना का उदय हो सकता ही नहीं। उन्हें आहार लाना और आहार करना, यह बात नहीं हो सकती। समझ में आया? क्षुधा की व्याख्या की। श्रीमद् ने पीछे क्षुधा की व्याख्या ली है। अठारह दोष। उनकी पुस्तक में हैं। रत्नकरण्ड -श्रावकाचार में ये दोष लिये हैं। तब वे लोग ऐसा कहते हैं कि यह तो अनुवाद किया है।

मुमुक्षु : सही लगा, इसलिए लिया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : है। भगवान तो ऐसे होते हैं। भगवान को और आहार हो तथा पानी हो... समझ में आया? चिमनभाई! क्या कहा यह? आहार नहीं होता? शास्त्र में लिखा है। गप्प मारी है। वहाँ तो सब प्रतिक्रमण और सामायिक करते थे।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हजार वर्ष में, ३३ हजार वर्ष... पण्डितजी! और भगवान को प्रतिदिन आहार? यह बात ही विपरीत है। समझ में आया? ....में लिखते हैं... ३३ हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। अमृत की डकार कण्ठ में से (आती है)—ऐसे तो देव होते हैं। ये बाह्य के देव। देवाधिदेव तीर्थंकर को और आहार, क्षुधा तथा राग- बिल्कुल तत्त्व से विरुद्ध है। व्यवहार श्रद्धा से भी भ्रष्ट है। उसे व्यवहार श्रद्धा भी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या हो? सम्प्रदाय बाँधकर बैठे, और उससे विपरीत करे अर्थात् कि किस खाते में खतवने जाये?

मुमुक्षु : तो ऐसा लिखने का हेतु क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह सम्प्रदाय चलाना। जगत को अच्छा लगे। स्त्री को मोक्ष हो... सबको इकट्ठा करना।

मुमुक्षु : पन्द्रह भेद से सिद्ध होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्द्रह भेद सिद्ध होते हैं। बिल्कुल नहीं होते। एक आत्मा अपरिग्रही स्वरूप जहाँ अन्दर पूर्ण प्रगट हुआ, उसे आहार कैसा, क्षुधा कैसी, तृषा कैसी? कहो, समझ में आया? दूसरे के भगवान तो आहार करे, पानी ले, क्या कहलाता है वह?

जीवनमुरारी। आता है न ? बिल्कुल सब... वह परमेश्वर ही नहीं। परमेश्वर को आहार नहीं होता और उन्हें आहार और आमन्त्रण दे, ऐसा नहीं होता। वह तो साधारण बात है, कहते हैं। समझ में आया ? और ऐसी क्षुधा-तृषा लगे, ऐसा असाता का रस रह गया तो इसका अर्थ यह है कि उनकी पवित्रता की परिणति से उसका रस मन्द नहीं पड़ा। मन्द नहीं पड़ा। ...आहा..हा.. ! ऐई ! देवानुप्रिया ! प्रकाशदासजी ! समझ में आया ? पहला दोष यह, क्षुधा नहीं होती।

असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र, तीव्रतर (अधिक तीव्र), मन्द अथवा मन्दतर... ऐसे चार भेद किये। उसमें तीव्र और मन्द दो लिये थे। तृषा के भेद हैं न बहुत। कैसी तृषा होती है ? एक श्वेताम्बर साधु था। भावनगर से निकला हुआ। तुम्हारे... नहीं वृक्ष, नहीं बबूल, उसमें बेचारे को प्यास लगी। मर गया। छह कोस, बारह मील हम चले हैं, कुछ नहीं, वृक्ष नहीं, बबूल नहीं। ऐसा समुद्र। ऐसी धांधली आगे। अकेला, वृक्ष बबूल कुछ नहीं होता। अकेला खार। उसमें बेचारे को प्यास लगी होगी...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....परन्तु रास्ते में पानी कहाँ मिले ? रास्ते में खाली हो, रास्ते में भरे नहीं। रास्ता खाली। ...पानी नहीं। समझ में आया ?

असातावेदनीय सम्बन्धी तीव्र,... तृषा। **तीव्रतर (अधिक तीव्र),...** गला चिपक जाये। **मन्द अथवा मन्दतर...** वापिस ऐसा लिया। थोड़ी भी नहीं और मन्दतर अकेली पीड़ा से अर्थात् थोड़ी। **(विशिष्ट असाता-वेदनीयकर्म के निमित्त से होनेवाली, जो विशिष्ट शरीर -अवस्था,...)** वह शरीर की दशा है। ...वह सब जड़ की दशा है। ऐसा असाता का उदय तीर्थंकर को नहीं हो सकता और वह **(शरीर-अवस्था, उस पर झुकाव करने से मोहनीयकर्म के निमित्त से होनेवाला, जो पीने की इच्छारूप दुःख, वह तृषा है)।** आहा..हा.. !

जहाँ पूर्ण अतीन्द्रिय अमृत का समुद्र उछला है। जहाँ सम्यग्दर्शन में भी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, तब केवली परमात्मा को तो अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उछल गया है। बालचन्दजी ! क्या है ? तुम्हारे सम्प्रदाय में यह है। पूर्व की बात है न, पूर्व में यह था न, पिताजी को यह था या नहीं ? आहा..हा.. ! भगवान को तृषा नहीं होती। पानी ले आओ, और पानी पीवे, ऐसी इच्छा नहीं होती। ऐसी शरीर की अवस्था भी उन्हें नहीं होती।

शरीर की अवस्था ऐसी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। भाई! शरीर की अवस्था भी ऐसी नहीं होती। इच्छा तो नहीं होती परन्तु शरीर की अवस्था ऐसी नहीं होती।

मुमुक्षु : परम औदारिक...

पूज्य गुरुदेवश्री : परम औदारिक शरीर है। दूसरे केवली हों तो परम औदारिक बाद में होता है। यह तो पहले परम औदारिक शरीर लेकर आते हैं। भगवान तो जन्में तब से परम औदारिक। ओहो..हो..! केवली को क्षुधा, तृषा कैसी? जन्मे तब से उन्हें क्षुधा-तृषा होती है परन्तु निहार नहीं होता। गृहस्थाश्रम में भी भगवान को आहार होता है, पानी होता है परन्तु निहार नहीं होता। आत्मा की पवित्रता लेकर आये हैं न! आहा..हा..! अरे! जगत लुटाया है न धर्म के नाम से। क्या हो?

मुमुक्षु : बनिया...

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया... है। झट सीधा मिले। सीधा मिले, सस्ता। लुट गया। सब्जी का दृष्टान्त नहीं दिया था? भिण्डी और लौकी। सुना था न? बनिये का दृष्टान्त नहीं? अध मण सब्जी बेचने के लिये ले आया होगा। अब बिक गयी, उसमें दस सेर बाकी रही। शाम का समय, परन्तु कुछ-कुछ टुवां क्या कहलाता है? लौकी, भिण्डी। घिसोड़ा अच्छा-अच्छा बीनकर ले जाये न वे, थोड़ा-थोड़ा रहे। फिर कोई बनिया जरा लोभी आया होगा। देख भाई! आठ आने सेर अभी तक बेचा है। यह दस सेर है, चार आने सेर देते हैं, थोड़ा टुवो है। टुवो समझते हो? दाग.. दाग.. थोड़ा सड़ा हुआ। पाँच रुपये के (बदले) ढाई रुपये लाओ। गजब यह तो! घर जाता है, वहाँ पूरे में सड़ा हुआ, एक भी अच्छा नहीं निकला। सस्ता लेने गया वहाँ... (बहुत महँगा पड़ गया)। बालचन्दजी! इसी प्रकार यह सस्ता लेने जाता है, वहाँ सब सड़े हुए हैं। पुण्य से धर्म होता है और ऐसे देव-गुरु होते हैं, इन्हें मानो तो तुम्हारा कल्याण होगा। यह सब सस्ता लेने जाते हैं, परन्तु महँगा पड़ेगा। कुछ हाथ नहीं आयेगा। ए.. कहो, समझ में आया?

यह पीने की इच्छारूप दुःख ही नहीं होता। **(३) इस लोक का भय, परलोक का भय,...** यह भगवान को नहीं होता। **अरक्षाभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, तथा अकस्मातभय — इस प्रकार भय सात प्रकार के हैं।** इनसे रहित होते हैं। निर्भय भगवान, आत्मदशा प्रगट हुई है। आहा..हा..! भले शरीर हो। अनन्त-अनन्त आनन्द की

निर्भयता, शान्ति की, स्वच्छता की प्रभुता प्रगट हुई है। उन्हें भय नहीं होता। कहाँ जन्मूँगा? कहाँ अवतार लूँगा? ऐसा उन्हें भय नहीं होता।

(४) क्रोधी पुरुष का तीव्र परिणाम, वह रोष है। वह भगवान को नहीं होता। क्रोधी पुरुष के तीव्र परिणाम। लाल आँख हो जाये न? भगवान का नाम धरावे और लाल आँख हो जाये, ऐसे भगवान नहीं होते। रोष नहीं होता।

(५) राग, प्रशस्त और अप्रशस्त... दो हैं। राग के दो प्रकार। एक शुभ और एक अशुभ। **दान, शील, उपवास तथा गुरुजनों की वैयावृत्त्य आदि में उत्पन्न होनेवाला, वह प्रशस्तराग है...** शुभराग है। वह राग भगवान को नहीं होता। देखो! यह **दान, शील, उपवास तथा गुरुजनों की वैयावृत्त्य...** में उत्पन्न होनेवाला पुण्यभाव है वह तो। पुण्यभाव राग-राग। समझ में आया? दान का भाव, वह पुण्य है; धर्म नहीं। शील, शरीर का शील ब्रह्मचर्य पालना, शुभराग है। उपवास करना... शुभराग है और गुरुजनों की धर्मात्माओं की वैयावृत्त्य से उत्पन्न होनेवाला प्रशस्तराग, वह भगवान को नहीं होता। दान, शील, उपवास भगवान को नहीं होते, ऐसा कहते हैं।

स्त्रीसम्बन्धी, राजासम्बन्धी, चोरसम्बन्धी तथा भोजनसम्बन्धी विकथा कहने तथा सुनने के कौतूहलपरिणाम, वह अप्रशस्तराग है। बुरा राग है, खोटा राग है। **स्त्रीसम्बन्धी,...** राग अशुभ। **राजासम्बन्धी,...** राग अशुभ। **चोरसम्बन्धी...** राग अशुभ। **भोजनसम्बन्धी...** राग अशुभ। यह **सुनने के कौतूहलपरिणाम, वह अप्रशस्तराग है।** किन्तु वह (पूर्व कथित) प्रशस्तराग है, वह दान, शील, उपवास से उत्पन्न होनेवाला राग है, तथापि वह राग दु:खरूप है। प्रशस्तराग भी दु:खरूप है।

मुमुक्षु : आकुलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता है। समझ में आया? इत्यादि में, ऐसा कहा है न? **गुरुजनों की वैयावृत्त्य आदि में उत्पन्न होनेवाला,...** भगवान की भक्ति, मूर्ति की पूजा में से उत्पन्न होनेवाला शुभराग, वह राग भी दु:खदायक है, क्लेश है। वह भगवान को नहीं होता।

यहाँ कहते हैं। **स्त्रीसम्बन्धी, राजासम्बन्धी, चोरसम्बन्धी तथा भोजनसम्बन्धी विकथा...** वह पाप है। **सुनने के कौतूहलपरिणाम,...** कैसे हैं? कैसी स्त्री? किस गाँव

की ? किस देश की ? कैसी रूपवान ? यह सब सुनने का विकल्प, वह बुरा पाप राग है। इसी प्रकार आहार, कहाँ का आहार ? किसने बनाया ? कैसे बनाया ? अमुक, विस्मयता करते हैं न ? कौतुहलता पाप राग है, वह भगवान को नहीं होता।

चार प्रकार के श्रमणसंघ के प्रति वात्सल्यसम्बन्धी मोह, वह प्रशस्त है... यहाँ मोह शब्द से (आशय) राग है। मोह अर्थात् पर में सावधानी, इतना (आशय है)। **चार प्रकार के श्रमणसंघ के प्रति वात्सल्यसम्बन्धी मोह,...** जो शुभ है। इसके अतिरिक्त का मोह वह अशुभ है। श्रमण चार प्रकार के हैं। देखो, **१. ऋषि, २. मुनि, ३. यति, और ४. अनगार।** नीचे **ऋद्धिवाले श्रमण, वे ऋषि हैं;...** ऐसे ऋद्धिवाले ऋषि के प्रति प्रेम, वह मोह शुभ है। शुभराग है। है मोह। आहा..हा..! **अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान अथवा केवलज्ञानवाले श्रमण,...** उनके प्रति प्रेम वह मोह है। समझ में आया ? शुभराग मोह है। यहाँ मिथ्यात्व की बात नहीं है।

उपशमक अथवा क्षपकश्रेणी में आरूढ़ श्रमण, वे यति हैं... उनके प्रति प्रेम भी राग है। **सामान्य साधु, वे अनगार हैं...** उनके प्रति प्रेम, वह भी राग है। समझ में आया ? **उससे अतिरिक्त मोह, अप्रशस्त ही है। (७) धर्मरूप तथा शुक्लरूप चिन्तन...** धर्मध्यान का चिन्तन, शुक्लध्यान का अन्तर विचार, वह प्रशस्त है। **उसके अतिरिक्त (आर्तरूप तथा रौद्ररूप चिन्तन) अप्रशस्त ही है।** वे भगवान को नहीं होते। प्रशस्त भी नहीं और अप्रशस्त भी नहीं।....किसका ध्यान करते हैं ? ध्यान कहा है न ? शुक्लध्यान केवली को। वे आनन्द का अनुभव करें, वह ध्यान है। आहा..हा..! अतीन्द्रिय अमृत सागर उछल गया है न! ज्वार आया है, ज्वार। पर्याय में समुद्र उल्लसित होकर ज्वार आया है। तुम्हारे में बाढ़ कहते हैं न ? बालचन्दजी! बाढ़ कहते हैं। हमारे यहाँ भरती कहते हैं। भरती.. भरती..। भगवान को तो अनन्त आनन्द की बाढ़ आयी है। सुधा जल, अमृत जल, जिनकी पर्याय में उछाला मारता है, उन्हें ऐसा राग आदि नहीं होता।

(८) तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों को वयकृत देहविकार वही जरा है। भगवान को जरा नहीं होती। करोड़ पूर्व की आयुष्य हो तो भी जरा नहीं होती। शरीर ऐसा का ऐसा लगता है। **तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों को वय...** यह वय-वय। है न ? उस वयकृत। उम्र.. उम्र। वह देह का विकार है। वय के कारण होनेवाली शरीर की जीर्णदशा। वह जीर्णदशा

भगवान को नहीं होती। क्षुधा लगी, तृष्णा लगी और शरीर जीर्ण हो गया और आहार लेने के बाद पुष्ट हो गया, ऐसा पाठ (श्वेताम्बर के) भगवती के १५ वें शतक में है। सभी बातों में बहुत फेरफार। जरा नहीं, लो!

(९) वात, पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न होनेवाली कलेवर (शरीर) सम्बन्धी पीड़ा, वही... भगवान को रोग नहीं। दवा लेने गये, भगवान को गोशाल ने मारा, उसने तेजोलेश्या समवसरण में... समवसरण में ऐसे आ ही नहीं सकते, सुन न! मारे किसका? भगवान को छह महीने तक लोहीखण्ड दस्त। लोहीखण्ड दस्त समझते हो? छह महीने तक लोहीखण्ड दस्त भगवान को रही, तेजोलेश्या मारी, लेश्या। सब बातें कल्पित हैं। भगवान को यह होता नहीं। अरे! व्यवहार भगवान कौन है, उन्हें पहिचाना नहीं। निश्चय परमात्मा को तो पहिचानता ही नहीं। समझ में आया? और यह व्यवहार भगवान की श्रद्धा, वह तो निश्चय को बताती है। सच्चे भगवान की श्रद्धा। अपनी श्रद्धा, वह तो कोई वस्तु है ही नहीं। देखो न! प्रत्येक की टीका करके स्पष्टीकरण किया है।

रोग... समझ में आया? भगवान को रोग हुआ, वहाँ अनगार को कहा, जाओ अमुक के घर से ले आओ। उसके घर के लिये पकवान बनाये हैं, वह ले आओ। घोड़े के लिये बनाया है वह। मेरे लिये बनाया है, वह लाना नहीं। ऐसा आता है न? घोड़े के लिये बनाया है, वह ले आना। ये सब बातें कल्पित रचना है। आहा..हा..! भारी कठिन बात, भाई! सम्प्रदाय की बात में से छूटना, जिसमें जन्म हुआ हो, उसके संस्कार पड़े हों, गलते.. गलते... गलते खाते-खाते निकले हैं। कितनी देर लगी, देखो न! खबर है या नहीं? ऐसे दोष अरिहन्त परमात्मा को नहीं होते। ऐसे अरिहन्त की श्रद्धा करना, वह शुभराग है और वह राग ऐसा बताता है कि अन्दर में इसे निर्मल समकित है, ऐसा बताता है। इसलिए यह व्यवहार की बात की है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)